ब्रह्मचर्य

ओशो द्वारा 1962 को चांदा, महाराष्ट्र में दिया गया प्रवचन, अब तक अप्रकाशित

मनुष्य के विकास का एक लंबा इतिहास है। पशु की चेतना से मनुष्य की चेतना तक, एक लंबी विकास की कड़ियां उसने पार की हैं; और, यह समझना भ्रांति होगी कि मनुष्य इस विकास का अंतिम सोपान है। जो विकास कल तक निरंतर, मनुष्य को पशु से आज की स्थिति तक लाया है, वह विकास मनुष्य पर किसी भी कारण से समाप्त नहीं हो जाता। मनुष्य, मनुष्य के भी पार जा सकता है, वह स्वयं का भी अतिक्रमण कर सकता है। मनुष्य अति चेतना, अति मानवीय चेतना या कहें दिव्य चेतना को उपलब्ध हो सकता है। तो अंततः कौन-से वे मार्ग हैं, कौन-से रास्ते हैं, जो मनुष्य को मनुष्य के अतिक्रमण करने में सहायक हो सकते हैं?

भारत ने एक रास्ता, एक वैज्ञानिक योग खोज निकाला था, जो मनुष्य को दिव्य चेतना में, ईश्वरीय चेतना में, भागवत चेतना में ले जाता है; इस मार्ग का नाम ब्रह्मचर्य हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या को उपलब्ध होना; अर्थात दिव्य जीवन को उपलब्ध करना। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि दिव्य चेतना को उपलब्ध करने का जो विज्ञान है; सामान्य अर्थों में वह केवल, शक्ति संरक्षण या वीर्‌य संरक्षण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हालांकि, ब्रह्मचर्य केवल इसी अर्थ तक सीमित नहीं है। ब्रह्मचर्य का विस्तृत पूर्णरूपेण अर्थ है– जहाँ हम मनुष्य जैसा जीवन जीते हुए भी ब्रह्मा के समान दिव्य, अलौकिक, ईश्वरीय एवं भागवत स्वरूप हो जाते हैं। मैं समझता हूँ कि यदि हम ठीक से ब्रह्मचर्य के प्रयोग और विज्ञान को समझ लें तो निश्चित ही मनुष्य के जीवन में जो पीड़ा, दुख और तनाव दिखाई देता है, उसका अंत हो जाएगा। सामान्यतः मनुष्य एक विरोध, एक आत्म विरोध या स्व विरोध है; यह, उसके भीतर का विरोधी रुप है। जब तक मनुष्य के भीतर विरोध है, मनुष्य की चेतना में विरोधाभास है, तब तक वह दो टुकड़ों में बंटा रहेगा और वह दोनों टुकड़े अलग-अलग दिशाओं में गतिमान रहेंगे; और इस स्थिति में, मनुष्य कहीं भी नहीं पहुंच पाएगा। जीवन के विकास के लिए जरूरी है कि उसमें एक संगीत पैदा हो, एक लय पैदा हो, एक इकाई का समावेश हो तथा एक योग, एक स्वरूप बने।

ब्रह्मचर्य एक स्वर है। एक सम स्वर का संगीत उपलब्ध करने की पद्धति है।

मनुष्य के भीतर विरोध क्यों है? इसे हम ठीक से समझें तो हम समझ सकेंगे कि मनुष्य के भीतर संगीत कैसे पैदा हो सकता है? मनुष्य के जन्म के साथ उसके शरीर और मन के विकास का यदि हम अध्ययन करेंगे तो प्रत्येक व्यक्ति द्विलिंगी (बायसेक्सुअल) है। इसका अर्थ है कि ना कोई केवल पुरुष है; और, ना ही केवल स्त्री है, बल्कि दोनों बातें प्रत्येक व्यक्ति में संयुक्त है। सामान्यतः बाहरी तौर पर, हम देखते हैं कि कोई पुरुष है या कोई स्त्री है। यह जो हमें ऊपर-ऊपर से दिखता है, जब इसे हम पूरे व्यक्तित्व के बारे में सही मान लेते हैं तो बहुत बुनियादी आधारभूत गलती हम करते हैं। कोई भी प्राणी इस जगत में एक ही लिंग का नहीं है, इकहरे वर्ग का नहीं है, ना तो नारी; और ना पुरुष ही।

प्राचीन काल से ही भारत में शिव-पार्वती का अर्धनारीश्वर स्वरुप प्रचलित रहा है, जिसमें शिव और पार्वती को एक-दूसरे के पूरक रूप में दर्शाया गया है। उनके इस अद्‌भुत रूप को मूर्ति द्वारा दर्शाकर यह सत्य प्रकट किया गया है कि पुरुष और प्रकृति संयुक्त हैं, साथ हैं, इकट्ठे हैं; और, ‘एक’ हैं। उसी प्रकार, प्रत्येक व्यक्ति भी द्विलिंगी है, इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि जब प्राणी गर्भ में आता है, तभी से वह विकसित होना आरम्भ हो जाता है; और, एक सीमा तक उसका विकास अनवरत होता रहता है। इस एक विशेष समयावधि तक उसमें कोई लैंगिक भेद व्युत्पन्न नहीं होता। इस दौरान ना तो वह पुरुष होता है, ना स्त्री। विकास की एक

सीमा के उपरान्त, मां के गर्भ में उसमें भेद आने शुरू होते हैं। यदि उसमें स्त्री तत्व अधिक विकसित होते हैं तो वह स्त्रीत्व को धारण करता है; या अगर, पुरुष तत्व की अधिकता होती है तो पुरुष के रूप में उसका शरीर आकार लेता है। तो स्त्री या पुरुष तत्वों के आनुपातिक हिसाब से उसका लिंग निर्धारित होता है; और तब जाकर, यह निश्चित होता है कि वह पुरुष होगा या स्त्री।

ऐसी कई घटनाएं अनेकों बार घटित हुई हैं कि बाद में कोई पुरुष परिवर्तित होकर स्त्री बन गया या कोई स्त्री बाद में पुरुष में परिणत हो गई। पहले विज्ञान के समक्ष यह एक पहेली ही सिद्ध हुई कि भला ऐसा कैसे संभव है? परन्तु अब इसकी वैज्ञानिक व्याख्या उपलब्ध है जो यह साबित करती है कि थोड़े-से रासायनिक और शारीरिक रूपांतरण से पुरुष, स्त्री बन सकता है; और स्त्री, पुरुष में परिवर्तित हो सकती है। इन तथ्यों ने इस गूढ़ सच्चाई का प्राकट्य किया है कि पुरुष देह में स्त्री का व्यक्तित्व विद्यमान है तथा स्त्री के शरीर में भी पुरुषत्व के अंश हैं। अब विज्ञान ने इस सत्य को स्वीकार लिया है कि थोड़े-से रासायनिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप शारीरिक बनावट एवं मानसिक स्थिति में फ़ेरबदल करना संभव है।

वैज्ञानिकों के मुताबिक, अब उन्होंने इसके कई रास्ते निकाल लिए हैं कि मां के पेट में भी बच्चे के लिंग को वैज्ञानिक रूप से निर्धारित किया जा सकता है, नर या मादा का आंकलन किया जा सकता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि दोनों तत्व एक साथ उपस्थित होते हैं; लेकिन, जिस तत्व का अनुपात ज्यादा होता है उस तत्व का मनुष्य रूप, पुरुष या नारी के रूप में विकसित होता है। मैं यह द्विलिंगी सिद्धांत इसलिए समझाना चाहता हूँ क्योंकि स्त्री का पुरुष के प्रति या पुरुष का स्त्री के प्रति जो आकर्षण है, यह निश्चित ही किसी बाहरी तत्व से नहीं; बल्कि, हमारे भीतर छिपे विरोधी तत्व के प्रति आकर्षण के कारण ही है। इस आकर्षण को समझना आवश्यक है, क्योंकि इसके बाद ही हम ब्रह्मचर्य को सही अर्थों में समझ सकते हैं।

आमतौर से प्रचलित ब्रह्मचर्य की धारणा में यह बात समाहित हो गई है कि संसार में पुरुष को स्त्री से संघर्ष करना है और हमेशा बचकर रहना है और स्त्री को सांसारिक पुरुष से हमेशा संघर्षशील रहते हुए स्वयं को अक्षुण्ण रखना है। स्त्री एवं पुरुष द्वारा एक-दूसरे से स्वयं का समूचा बचाव ही ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी की परिभाषा मानी गई। यद्यपि, यह पूर्णरूपेण भ्रांत धारणाएँ हैं मगर ये भ्रमित करने वाले मत हमेशा से प्रचलन में रहे हैं और दृढ़ता से इनका पालन होता रहा है। हालांकि पुराने समय से ही इसका लंबा इतिहास है। लेकिन फिर भी, मैं स्पषट रूप से कह देना चाहता हूँ कि ये धारणाएँ मूलतः भ्रांत और गलत हैं। इन धारणाओं पर आधारित ब्रह्मचर्य की जो साधनाएं बताई गई हैं, अंततः वे सभी दमन की और जबरन थोपी गई साधनाएं बन जाती हैं; क्योंकि आत्म-विरुद्ध होकर कभी कोई व्यक्तित्व सुंदर नहीं बन सकता, विकसित नहीं हो सकता, वरन कुरूप हो जाता है, विकृत हो जाता है। जबरन दमनपूर्वक, आत्म हिंसा या मनः हिंसा द्वारा कोई भी मार्ग जीवन को श्रेष्ठता और दिव्यता की ओर नहीं ले जा सकता।

इसलिए, इस द्विलिंगी मनुष्य के ही नहीं; बल्कि, प्रत्येक प्राणी के आंतरिक विरोध को मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। जब हम यह समझ पाएंगे कि आकर्षण और खिंचाव के केन्द्र आंतरिक हैं, बाहरी नहीं हैं। जैसे यह भोगी की भूल है कि वह नारी को बाहर प्रत्यक्ष समझ रहा है। वैसी ही गलती योगी भी कर रहा है, नारी को स्वयं से बाहर समझकर। न तो भोग्या स्त्री ही बाहर है और ना ही त्याज्य स्त्री ही बाहर है। अगर हम भोग्या और त्याज्य को खुद से बाहर कहीं पाते हैं, तो यही हमारी नासमझी है। दोनों ही स्थितियाँ गलत हैं। छोड़ने वाला (विरक्त) और पकड़ने वाला (आसक्त), दोनों ही गलत हैं, क्योंकि दोनों ही नारी को या पुरूष को बाहर स्वीकार करते हैं। यह बाहरी स्वीकृति ही अज्ञान है। बाहर कुछ भी नहीं है, जो हमें खींच सके। मुझे प्यास लगती है; तब ही तो, पानी का मेरे लिए कोई अर्थ है। मेरे भीतर प्यास ना हो, तब मैं पानी के पास से हज़ार

बार निकलूं, तो भी पानी मेरे भीतर प्यास पैदा नहीं कर सकता। यह मेरे भीतर का अर्थ है कि प्यास भी भीतर है और पानी भी भीतर ही उपलब्ध है। मेरे भीतर प्यास हो और पानी उपलब्ध न हो, तो ही मैं पानी की तलाश में निकलूंगा। ठीक इसी तरह, मेरे भीतर यदि कामना और आकर्षण के बीज हैं, तो कामिनी और काम्य भी मुझमें ही हैं। जिस प्रकार, उस प्यास का केन्द्र भीतर है; उसी प्रकार, कामना और वासना के केन्द्र भी बाहर नहीं हैं और ब्रह्मचर्य के केन्द्र भी बाहर नहीं, वरन भीतर हैं। कामप्रेरित व वासना से अभिभूत होकर जब कोई पुरुष इसकी पूर्ति की बाहर तलाश करता हैं, तब इस बाहर की खोज में ऐसी प्रतीति होती है, पुरुष के भीतर की आंतरिक नारी बाहर प्रदीप्त (प्रोजेक्ट) होने की प्रतीति देती है; और, बाहर किसी नारी पर प्रभारित हो जाती है। तब, उस नारी में; पुरुष अपनी कामना को, वासना को तृप्त करने के प्रयास में लग जाता है।

लेकिन हम जानते हैं, कभी कोई अपनी कामना को तृप्त नहीं कर पाया, न वासना को ही तृप्त कर पाया है, क्योंकि अगर बाहर की नारी में तृप्ति होती तो पुरुष तृप्त हो जाता और बाहर के पुरुष में तृप्ति होती तो स्त्री तृप्त हो जाती। लेकिन, आज तक कोई पुरुष किसी नारी से तृप्त नहीं हो पाया, ना ही कोई नारी किसी पुरुष से तृप्त हो पाई है। अतृप्ति की आग और अधिक बढ़ती चली जाती है। जितना हम तृप्त होते हैं; उतनी, अतृप्ति विस्तीर्ण होती जाती है। इसका अर्थ यह है कि प्रयास ही गलत दिशा में हो रहे हैं, जहाँ हम तृप्ति को खोज रहे हैं, वहाँ तृप्ति है ही नहीं; और, हम यही बुनियादी भूल कर रहे हैं। पर, यदि हम मनुष्य के भीतर के विरोधी केन्द्र को देखें और समझें तो मामला उजागर होगा।

जैसाकि मैंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य द्विलिंगी है उसमें पुरुष भी है; और, स्त्री भी है। अगर उसमें पुरुष के तत्व ज्यादा हैं, तब उसके चेतन मन में पुरुष स्वरुप प्रकट होता है और अचेतन में उसका मादा तत्व छुप जाता है। मनुष्य के मन के दो विभाग हैं– चेतन (कॉन्शियस) और दूसरा अचेतन (अनकॉन्शियस)। मनुष्य के चेतन में पुरुष के अवयव ज्यादा होने के कारण, उसके चेतन स्वरुप में पुरुष प्रकट होता है; और यदि मादा के गुण-धर्म कम हों तो उसके अचेतन में मादा दब जाती है। और, अगर इसके विपरीत नारी के तत्व ज्यादा हों; तो, चेतन मन में नारी का प्रकटन होता है और अचेतन में पुरुष के तत्व छिपे रहते हैं। वो जो अचेतन में विरोधी छुपा है वह अचेतन में विराजमान विरोधी चेतन के अपने विरोधी को आकर्षित करता है। जगत के पूरे नियम विरोध के आकर्षण पर आधारित हैं। ऋण विद्युत, हमेशा धन विद्युत को खींचती है। चुंबकीय एक छोर, दूसरे विरोधी छोर को खींचता है, एक ध्रुव, दूसरे ध्रुव को खींचता है। यह सारा जगत विरोधी शक्तियों के आकर्षण के सिद्धांत पर निर्मित है। जो बात जगत के भौतिक नियमों के बाबत सत्य है, वही तथ्य मनुष्य के मानसिक नियमों पर भी लागू होती है। क्योंकि, मनुष्य का मन प्रकृति के बाहर के तत्व नहीं हैं, वो उसके भीतर का तत्व है। यह समझना आवश्यक है कि यहाँ सब कुछ विरोध पर टिका और खड़ा है वैसे ही मनुष्य के मन के नियम भी विरोध पर स्थापित हैं। मनुष्य के मन के भीतर पुरुष और स्त्री के बीच जो आकर्षण है; वह, दरअसल उसके चेतन और अचेतन तत्वों के बीच यानि विरोधी तत्वों का आकर्षण है। यदि मेरे चेतन मन में पुरुष है तो मेरे अचेतन में एक नारी बैठी है। मेरे चेतन मन का पुरुष उस नारी पर झूमता है और उस नारी से मिलने को उत्सुक है, वह उस नारी से मिलकर ही पूर्ण हो सकता है क्योंकि वह अधूरा है, अपूर्ण है; और, आधा अंग अचेतन में डूबा है। इसलिए ही मिलन की प्यास है, इसलिए मिलने की आकांक्षा है, वासना है। यह कुछ बुरी वासना नहीं है; यहाँ कुछ बुरा या भला नहीं है, प्राकृतिक है, यह प्रकृति की अद्‌भुत व्यवस्था है कि वह विरोध के बीच से ही विकास का प्रस्फुटन करती है, प्रतिकूल से ही अभिवृत्ति करके अपने नियम बनाती है।

मेरे चेतन मन का पुरूष मेरे अचेतन में छिपी स्त्री से आकर्षित है, लेकिन अचेतन अंधेरे में दबा है; और, अचेतन का हमें कोई पता नहीं। जब मेरे चेतन का पुरूष, अचेतन की स्त्री की ओर आकर्षित होता है तो

स्वाभाविक है कि मेरी खोज अचेतन के अंधेरे में ना होकर बाहर की ओर होगी। क्योंकि मेरी सारी इन्द्रियाँ जैेसे आँख, कान के द्वार बाहर खुलते हैं, वहाँ मैं स्त्री की खोज शुरू कर देता हूँ। यह अत्यंत स्वाभाविक है, फिर एक दिन कोई एक स्त्री मिलती है, जो मेरे भीतर की स्त्री से लगभग मिलती जुलती होगी, तब हम कहते हैं, किसी से हमें प्रेम हुआ। प्रेम का अर्थ है, मेरी आतंरिक स्त्री के रूप में उससे मिलती-जुलती स्त्री मुझे बाहर उपलब्ध हो गई है।

मेरे भीतर जो स्त्री है, उसी समरूप स्त्री मुझे बाहरी जगत में प्रत्यक्ष हो गई है। वो ढांचा, आज अचानक प्रकट रूप में सम्मुख आ गया है जिसकी खोज थी, जिस कारण अनायास ही आकर्षण अनुभव होने लगता है। तब अचेतन का प्रेमी पुरुष हो या स्त्री प्रेमी को कई बार समझ नहीं आता है कि मैं उस व्यक्ति को प्रेम क्यों कर रहा हूँ वह कितनी ही दलीले दें, कितना ही अपने को समझाये लेकिन प्रेम की सङ्घटना अनायास घटती है। ऐसी ही सङ्घटना स्त्री के मन में भी घटती है, लेकिन वह जान ही नहीं पाती स्वयं के भीतर, अचेतन में स्थित, स्वयं की पुरुष प्रकृति को; और यहाँ भी, अज्ञान और अँधेरे में घिरकर बाहरी खोज आरम्भ हो जाती है। फिर जब इस खोज के बाद भी तृप्ति प्राप्त नहीं होती; बल्कि हम पाते हैं कि शक्ति व्यय होती है, जीवन व्यय होता है; और, स्वाभाविक प्रश्न मनुष्य के सामने खड़ा हो जाता है कि क्या करें। इस क्या करें से एक प्रतिक्रिया पैदा होती है और लोग कहते हैं कि बचो, बाहर की कामिनी नरक है। वे कहते हैं बाहर के स्त्री और पुरूष से बचो ! इससे दमन, आत्म-उत्पीड़न, स्वयं पर जबरदस्ती पैदा होती है जिसे लोग संयम कहते है, मगर, यह संयम गलत है। कोई संयम, ज्ञान के बिना सही नहीं होता। अगर हम, भीतर के उस केन्द्र को नहीं पहचानते, जिसके कारण बाहर आकर्षण है तो ऐसा संयम गलत है, उससे हम विक्षिप्त हो सकते हैं, विकसित नहीं हो सकते। इसके स्पष्ट परिणाम दिखते हैं।

आज दुनिया के पागलखानों में जितने पागल बंद है, उसमें अधिक पागल लोग वे हैं, जिन्होंने अपनी वासना का दमन किया है, जबरदस्ती की है, हिंसा की है। अपने भीतर उठते हुए किसी आवेग को छुपाया है। वो आवेग जब बढ़ता है तो भूकंप की तरह किसी व्यक्तित्व को तोड़ जाता हैं। इसलिए यह प्रतिक्रिया कि बाहर की किसी स्त्री से बचो; गलत हैं, क्योंकि बाहर की स्त्री कोई अर्थ नहीं रखती। अर्थ तो भीतर बैठी स्त्री को जानना और समझना है। हम भीतर की स्त्री को कैसे देखे, कैसे पहचाने, और कैसे भीतर की स्त्री या पुरुष के प्रति ज्ञानपूर्ण हो जाएं? यही मुख्य मुद्दा हैं। यह सवाल कैसे हल होगा? इसे हल करने का रास्ता है "ब्रह्मचर्य"। यह मेरी नवीनतम व्याख्या है; और, साथ में सबसे प्राचीन भी यही है। जब भी ब्रह्मचर्य साधा गया है, इसी व्याख्या के माध्यम से साधा गया है। जब भी ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ है, उसने अपने भीतर की स्त्री को या भीतर के पुरुष को विसर्जित कर दिया है। उसके भीतर का विरोध समाप्ति पर पहुंचकर एक लय, एक संगीत की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है। एक इकट्ठा योगनिष्ठ व्यक्तित्व उसमें विकसित हुआ है; और, उसके परिणाम जीवन में शांतिपूर्ण और आनंदमय हैं। उसके माध्यम से जीवन में एक नए जगत का उद्भव हुआ है; जो, दिव्य चेतना का जगत है, ब्रह्म का जगत है। इस नूतन प्रकटीकरण के कारण, उस जीवन में प्रवेश हेतु, हमने उसे 'ब्रह्मचर्य' का नाम दिया है।

कैसे हम भीतर चले? कैसे हम भीतर के विरोधी तत्व को विसर्जित कर सके! यह एकमात्र समस्या, एकमात्र प्रश्न है। मेरे देखने में, मेरे समझने में जब तक हम अचेतन मन की गहरी तलहटी में नहीं उतरते, तब तक अचेतन में क्या छुपा हैं, उसे कैसे जान सकते हैं; और, जिसे हमें जीतना है उसे जानेंगे नहीं तो जीत कैसे हो सकती है, यह समझ बिना जीत के असंभव है। ज्ञान ही जीत है। जानना ही जीतना है। तो इसे हम कैसे जाने, क्या रास्ता है कि हम अचेतन में चले। हम सामान्यतः चेतन की सतह पर जीते हैं। चेतन में जो विचार चलते है,

उनमें ही झूमते हैं और उसमें ही जीवन बीत जाता है। चेतन की लहरें हमें उलझाकर रखती है, और गहरे में उतरने से बचा कर रखती हैं। झील पर हम देखें तो लहरे हैं, लहरों के नीचे बहुत गहरी झील है। यदि हम लहरों पर आँखे टिकाए रखते हैं तो झील की गहराई में नहीं देख सकते, ठीक ऐसा ही मनुष्य का मन है। मन के ऊपर जो अशांत लहरें है, उससे थोड़ा नीचे गहराई में उतरना होगा; तब हम, उन स्तरों को देख पाएंगे जहाँ कि अंधेरा है, गहनता है। अपने भीतर विद्यमान अँधेरे कक्षों या कोष्ठों को देखकर, हम स्वयं से परिचित होंगे और अपने सम्पूर्ण चेतन और अचेतन से परिचित होना जीवन में एक बहुत अद्भुत क्रांति लाता है; जो, ध्यान के द्वारा संभव है। इसलिए ध्यान ही एक मार्ग है, ब्रह्मचर्य को उपलब्ध करने का।

ध्यान का अर्थ है, मन के समस्त चेतन और अचेतन परतों में, विवेकपूर्ण तरीके से ज्ञान के प्रकाश को, जागृति को, ले जाना ! अर्थात ऊपर की सतह पर ना जिएं और भीतर से पूरे मन को प्रकाशित हो जाने दें। इसे ऐसे समझें कि कोई मकान है और हम उसके बाहर के बरामदे में जीवन भर जीते रहें, भीतर के कमरे में न जाएं; तो, भीतर के कमरे से हमारा परिचय ही न हो। तब, भीतर के अन्धकार भरे कक्षों में कुछ न कुछ एकत्रित होता रहेगा जो हमारे विरुद्ध होगा। भीतर में हमारे विरोध में यह जो एकस्थ होगा और हम इसकी सुधि भी नहीं लेंगे, तो इससे जीवन शांत नहीं हो सकता क्योंकि जब भी भीतर के तिमिर द्वारा किन्हीं विरोधी प्रवृत्तियों का हमला हम पर होगा, तो उनसे बच पाना असंभव हो जाएगा। अतः जब हम वासनाओं को जीतने की पुरज़ोर प्रयास करते हैं, तो परिणामत: चेतन में से वासना को अचेतन में सरका देते हैं और भीतर ही भीतर वह वासना का फोड़ा पक जाता है, और एक दिन वेग से प्रकट होता है; और, चेतन की सारी की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। चेतन में जमाई गई कोई व्यवस्था बहुत काम की नहीं है। अचेतन से मूलतः वे जड़ें नष्ट होनी चाहिए; जोकि, अपनी शाखाओं को चेतन तक पहुँचा देती हैं। जब उनकी शाखाएँ चेतन में आती है और उनका विष चेतन में आता है, हम असमर्थ हो जाते हैं संभलने में। जब किसी भी स्त्री और पुरूष को कामवासना पकड़ती है, उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि उसके विरोध के बावजूद जैसे कोई चीज़ उसे पकड़ रही है, उस पर छा रही है। उसने पच्चीसों बार संकल्प किया कि वह अंसगत बात से बचेगा, उसे इसमें व्यर्थता दिखती है, अविवेक दिखता है, अज्ञान दिखता है, शक्ति का अपव्यय दिखता है; लेकिन, जब यह विष, यह धुआँ फैलता है और उस मनुष्य को घेर लेता है, तब वह असमर्थ हो जाता है। वह लगभग बेहोश और मूर्छित हो जाता है और उस मूर्छा में वह अत्यंत कामुक होता है।

समस्त वासना मूर्छा में की गई हैं, समस्त कामप्रेरित क्रियाएं बेहोशी में की गई हैं। वे मूर्छा में इसलिए हुई हैं कि नीचे से, अचेतन से विष आता है और हमें घेर लेता है और हम असमर्थ हो जाते है इसे संभालने में क्योंकि जहाँ इसकी जड़ें हैं, वहाँ तक हमारी पहुँच नहीं है। उन विष की अग्निमय जड़ों को अगर उखाड़ दिया जाए, तो यह लपटें जो ऊपर चेतन तक आती हैं, वो अपने आप बंद हो जाएँगी। तब व्यक्तित्व में एक निर्मल अनंत शांति का स्थापत्य होता है। ध्यान, अचेतन की ओर अभिप्रेरित करते हुए, उसकी परतों में उतारता है।

ध्यान द्वारा, चेतन में चलने वाले विचारों के प्रवाह को, उसके प्रतिबिम्बों को शनैः-शनैः छोड़ते हुए, अचेतन में आहिस्ता-आहिस्ता उतरने की चेष्टा की जाती है। यह विचार प्रवाह छोडा जा सकता है; और, अचेतन में उतरा जा सकता है। यह कठिन नहीं है, बस हमारी आदत नहीं है; इसलिए, मुश्किल लगता है। हम इन विचारों के इतने आदि हो गए हैं, इनमें इतने लिप्त रहते हैं कि यह ख्याल भी नहीं आता कि इससे भिन्न या अलग हुआ जा सकता है।

अनेकानेक लोगों ने इस विचार प्रवाह को छोड़कर गहराई उपलब्ध की है; और, हम भी उपलब्ध कर सकते हैं। जिन्होंने उपलब्ध की है, उनके जीवन में अद्भुत शांति प्रकट हुई है। पश्चिम के बहुत बड़े इतिहासकार

एक्सिवर्ट ने लिखा है- जब पूरब में मैंने बुद्ध की प्रतिमा को देखा, तब लगा, जीवन में अगर 'वैसी ही शांति' उपलब्ध नहीं होती तो जीवन व्यर्थ है। वह असीम शांति कैसे प्राप्त होगी? वह अगम्य, वह अपार अनुभव बुद्ध को, महावीर को, ईसा को होता होगा। इनके चेहरे पर जो आनंद और शांति दिखाई देती है, जो प्रकाश-पुंज इनके मुख पर तथा आभामंडल में दिखाई देता है, उसका स्रोत इनकी चेष्टाओं का परिणाम है कि इन्होंने जीवन की अंसगति, विरोध और संघर्ष को समाप्त कर दिया है और यह एक गहरे संगीतपूर्ण, लययुक्त जीवन में उतर गए है; जहाँ, कोई विरोध नहीं है। जहाँ न पुरुष है, न स्त्री है; वरन एक तीसरे लय तत्व का उदय है; जिसे, हम ब्रह्म, दिव्य, ईश्वर या आत्मा कहते हैं। इसलिए सारे धर्म कहते हैं- आत्मा न तो स्त्री है, ना ही पुरुष। स्त्री और पुरुष तो केवल मन के दो भेद हैं। जैसे ही हम मन के पार चलने को उद्धत होते हैं, हम पाते हैं कि हममें स्त्री-पुरुष का लिंग भेद समाप्त हो गया है। स्त्री पुरुष के बाहर हो जाना, इनसे विलग हो जाना ब्रह्मचर्य है। जब तक कोई पुरुष है, कोई स्त्री है, तब तक वह ब्रह्मचर्‍य को धारण नहीं कर सकता।

पुरुष, पुरुष के हिस्से से ब्रह्मचर्य को धारण नहीं कर सकता है; और स्त्री, स्त्री के हिस्से से ब्रह्मचर्य को धारण नहीं कर सकती, ये तो सिर्फ विरोधी छोर हैं, जोकि साथ-साथ जीते हैं और साथ-साथ मरते हैं। कोई ये नहीं कह सकता कि मेरा पुरूष भर बचाओ, मेरी स्त्री विसर्जित हो गई है। यह झूठी बात है, यह बिल्कुल असंभव है; वैसे ही, जैसे कोई कहे कि डंडे के एक छोर को हमने समाप्त कर दिया है और अब एक ही बचा है। ये बिलकुल नासमझी वाली बात है। डंडे के दोनों छोर या तो एक साथ समाप्त होंगे या एक साथ रहेंगे। इसी तरह, ध्यान ही वह माध्यम है, जिससे हमें अपने भीतर के स्त्री-पुरूष से परिचय होता है; और, उसी से ज्ञान उपलब्ध होता है। भोगने की आकांक्षा वे करते हैं, जिनके लिए बाहर अर्थ है; उसी प्रकार, बाहर कुछ छोडने की आकांक्षा वे करते हैं जिनके लिए बाहरी संसार का मूल्य है। लेकिन, सचमुच ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति जानता है कि बाहर ना अर्थ है, ना प्रयोजन है; तब, वह बाहर कुछ छोडता नहीं। जो आदमी हीरे एकत्र करता है; किस प्रकार वह हीरे को मूल्यवान समझता है; उसी प्रकार, जो व्यक्ति कहता है कि मैं हीरे का परिग्रहण नहीं करता, मैं हीरों को छोड़ता हूँ, त्यागता हूँ, वह भी तो हीरों को अहमियत दे रहा है। पकड़ने और छोड़ने में फर्क नहीं है। दोनों उसके मूल्य को स्वीकार करते हैं। जो स्त्री को छोड़ता है, या स्त्री के पीछे जाता हैं, दोनों ही स्त्री को महत्ता देते हैं।

ब्रह्मचर्य का बोध व ज्ञान, इस स्थिति में मनुष्य को पहुंचाता है कि बाहर कोई स्त्री, कोई पुरूष नहीं हैं। मेरे अचेतन में मेरा विरोधी तत्व बैठा हुआ है और जब मैं अचेतन में उतरता हूँ; तो, स्वयं से पूरी तरह से परिचित होता हूँ और चेतना के उस तल पर पहुँचता हूँ; जहाँ, मन समाप्त होता है और मनातीत सत्ता का प्रारंभ होता है। वहाँ जाने पर मुझे पता चलता है कि ना तो मैं पुरूष था ना मैं स्त्री था और भूल से दोनों विरोधों के बीच एक से संयुक्त हो गया था। जिस दिन यह बोध होता है कि वह ना तो स्त्री ना तो पुरुष है, उस दिन वह व्यक्ति पूर्ण ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है।

इसलिए ब्रह्मचर्य को अलग से साधना नहीं है, थोपना नहीं है, लादना नही है; वरन, ध्यान के माध्यम से दो घटनाएं अपने जीवन में उतार लेनी है, जिनका परिणाम ब्रह्मचर्य होता है। पहली घटना यह जानना है कि मुझे जो विरोधी पुरूष को स्त्री आकर्षित कर रही है, या स्त्री को पुरूष आकर्षित कर रहा है वह बाहर नहीं है। दूसरी बात यह मन के मेरे दोहरे तत्व चेतन और अवचेतन में बैठा मेरा पुरूष और मेरी स्त्री मेरे स्वरूप के अंग नहीं हैं मेरा स्वरूप इनसे पृथक है। यह केवल मन के घेरे हैं जैसे कपड़ा मेरे स्वरूप का अंग नहीं है, मैं कपडे से घिरा हूँ; लेकिन, मै पृथक हूँ। वैसे ही मनुष्य की चेतना मन से घिरी है; लेकिन, मन से अलग है। मन तो उसका केवल बाह्य आवरण मात्र है। इस बाह्य आवरण को पार करते-करते आश्चर्यजनक रूप से पता चलता है कि चेतना न तो पुरूष है; ना तो स्त्री है, जिस दिन यह बोध स्पष्ट हो जाता है, परिपूर्ण ब्रह्मचर्य सध जाता है। यह

परिपूर्ण ब्रह्मचर्य अद्‌भुत आनंद है, अद्‌भुत जीवन संगीत है। इसे उपलब्ध करने पर ही यह ज्ञात होता है कि वस्तुतः जीवन का प्रयोजन क्या था। इसके पहले जैसे सिर्फ संघर्ष था, सिर्फ आत्म-विरोध था, तनाव था। इसके पहले ज़िन्दगी एक कशमकश थी, एक व्यर्थ की दौड़धूप थी, एक आंतरिक मानसिक लड़ाई थी; जिसमें, कोई सुख-शांति नहीं थी। इसे उपलब्ध होने पर नये जीवन का प्रारंभ होता है; और, प्रतीत होता है कि अब एक नया जन्म हुआ है, एक नई शुरुआत हुई है।

इसलिए, मैं कहता हूँ कि ब्रह्मचर्य वास्तविक जीवन का प्रारंभ है। उसके पहले हम लगभग मृत हैं, कोई अर्थ नहीं है। इसीलिए श्रेष्ठजनों ने ब्रह्मचर्य को जीवन का केन्द्र एवं अमृत माना है। सचमुच, ब्रह्मचर्य जीवन का केंद्र है। उनके इसी दर्शन ने, इसी विचार ने जीवन का वास्तविक अर्थ समझाया है। आज की दुनिया में यह विचार खो गया है। इसके परिणामस्वरुप, दुख और विषाद हैं, प्रयोजनहीनता, अर्थहीनता है। जीवन का रस और आनंद समाप्त हो गया है। इस स्थिति को ज्यादा दिन नहीं खीचा जा सकता। सारे विचारशील लोग घबरा गए हैं इस संताप से।

पश्चिम के एक बड़े विचारक किलगार्ड ने कहा है “लाइफ इज़ एंगुइश” यानि जीवन संताप है, पीड़ा है, दुःख है। हाल ही में, हेडगेयर नाम के दूसरे विचारक ने कहा कि “जीवन तो एंजाइटी यानि चिन्ता है।” और इस चिन्ता का एकमात्र उपाय आत्महत्या दिखाई देता है। बुद्ध-महावीर जैसे ज्ञानी भी कहते आए हैं कि जीवन दुख है; लेकिन, इसके बाहर जाने का, इसके निरोध का मार्ग भी है। इन दुखद एवं नैराश्यपूर्ण विचारों से पार जाने का मार्ग, बुद्ध और महावीर जैसे ज्ञानियों ने ‘आनंदपूर्ण ध्यान’ बताया है। जीवन के पार दिव्य जीवन भी हैं, जिससे संयुक्ति का उपाय है।

हम उस विज्ञान को भूल गए हैं, जो आनंद की ओर ले जाता है तथा जिससे जीवन का होना एक कृतज्ञता बन जाता है; और, वह मार्ग है- ध्यान और ब्रह्मचर्य का। ध्यान प्रथम है और ब्रह्मचर्य उसमें अंतिम, महानतम महत्वपूर्ण उपलब्धि है ना कि कोई राजनैतिक विचार या कोई साम्प्रदायिक और धार्मिक बातों का मूल्य है। अंततः, सारे पंथों, सारे मज़हबों का मूल निचोड़ ध्यानातीत अवस्था है, सभी सम्प्रदायों का मौलिक निष्कर्ष ध्यान का मार्ग है; और, ब्रह्मचर्य उस पर खिलने वाला अंतिम फूल है, जिससे जीवन आनंद से भर जाता है।